वर्तमान लोकतंत्र और पं0 जवाहर लाल नेहरू के राजनीतिक विचार

प्रिया कुमारी
शोध छात्रा
राजनीति विज्ञान विभाग
बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सार–संक्षेप :

भारतीय लोकतंत्र ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हमेषा बल दिया है। यही कारण है कि यहां मीडिया का व्यापक प्रसार हुआ है। मीडिया ने भी अपनी धर्मनिरपेक्ष भूमिका निभाते हुए कई उपलब्धियां हासिल की है और भारतीय लोकतंत्र को परिपक्व बनाने में, उसकी विसंगतियों पर चोट करने में मीडिया की अहम भूमिका रही है। सूचना अधिकार इसी परिप्रेक्ष्य में एक अगली कड़ी है। वर्तमान लोकतांत्रिक युग में राजनीतिक एवं प्रशासनिक सफलता के लिए नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साधारण भाषा में नेतृत्व से अभिप्राय उस योग्यता से है जो अन्य लोगों में एक सामूहिक उद्देश्य का अनुसरण करने की इच्छा जाग्रत करती है। नेतृत्व एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा अन्य व्यक्तियों को एक निर्धारित लक्ष्य की ओर ले जाने की क्रिया को कहते हैं। नेहरू के विचारों में परिवर्तन न केवल इस बात से प्रभावित हुआ कि उन्होने बदलती परिस्थितियों के फलस्वरूप विकास को स्वाभाविक माना, बल्कि इस बात से भी कि उनमें लगनों और बाह्य प्रभावों के सामने कुछ–कुछ झुक जाने की प्रवृत्ति थी। जब नेहरू ने भारत सरकार का नेतृत्व किया, तो उन्होनें वह राजनीतिक लचीलापन प्रदर्षित किया, जो व्यावहारिकतावादी स्वरूप का था। नेहरू के राजनीतिक विचारों का विकास निरंतर अवरोही स्वरूप का नहीं था। उसमें राजनीतिक वातावरण और राजनीतिक संघर्ष के अनुरूप चढ़ाव–उतार आते रहते थे।

कुंजी : *लोकतंत्र, संघर्ष, राजनीतिक विचार, नेतृत्व, वातावरण*

परिचय :

वर्तमान लोकतांत्रिक युग में राजनीतिक एवं प्रशासनिक सफलता के लिए नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साधारण भाषा में नेतृत्व से अभिप्राय उस योग्यता से है जो अन्य लोगों में एक सामूहिक उद्देश्य का अनुसरण करने की इच्छा जाग्रत करती है। नेतृत्व एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा अन्य व्यक्तियों को एक निर्धारित लक्ष्य की ओर ले जाने की क्रिया को कहते हैं। किन्तु इसमें दबाव का अंश नहीं होना चाहिए। नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों के व्यवहार को प्रभावित करता है। अतः नेतृत्व से अभिप्राय है मार्ग दर्शन करना, यह मार्ग दर्शन शासन एवं राजनीति के प्रत्येक पक्ष एवं स्तर से संबंधित होता है। पं0 जवाहर लाल नेहरू के राजनीतिक विचार की एक मुख्य विषेषता यह थी कि वह निरन्तर चलती रहती थी उसमें प्रवहमानता थी। विष्व में ऐसी अपरिवर्तनीय विचारधारात्मक प्रणालियां या अवधारणाएं नहीं है, जो नये वस्तुगत और आत्मगत कारकों से किसी न किसी रूप में प्रभावित न हुई हों, परन्तु निस्संदेह ऐसी भी

प्रणालियां और लोग है ं, जो पुरातन से चिपके रहते हैं और अपनी ही पूर्णता में विष्वास करते है, और किसी भी नवीनता को साररहित मानकर उसके प्रादुर्भाव को रोकने या उसके महत्व को नगण्य करने की ऐसे कोषिष करते है, जैसे कि वे उससे अनिछुक रहे हों। नेहरू उनका एकदम विलोम थे। ब्रह्मड, समाज, मनुष्य और विचारों के अविराम विकास में उनकी आस्था थी। अपने विचारों को समृद्ध या परिवर्तित करने की अनिच्छा में उन्हें कोई सद्गुण नहीं दिखायी देता था। वह तो उनके लिए संकीर्ण मनोवृत्ति, न कि सत्यता का चिन्ह था। जीवनपर्यंत उन्होंने जो कुछ भी नूतन हो, उसे स्वीकार करने, अपने आस–पास होनेवाले परितर्वनों से पीछे न पड़ने की क्षमता को बनाये रखने की चेष्टा की। इस अर्थ में नेहरू एक चेतनषील द्वंद्ववादी थे। उनके अपने विचारों का जो अनवरत विकास हो रहा था, वह उनके लिए एक स्वयंसिद्ध बात थी, एक ऐसा मनपसंद ख्याल था, जिसकी चर्चा वह अक्सर किया करते थे। विष्व इतिहास की झलक के प्रथम संस्करण के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा ''मैंने उन विचारों को बनाये रखा है, लेकिन जिन दिनों मैं पत्र लिख रहा था, उन्हीं दिनों ही इतिहास पर मेरा दृष्टिकोण धीरे–धीरे बदलता गया। नेहरू के विचारों में परिवर्तन न केवल इस बात से प्रभावित हुआ कि उन्होने बदलती परिस्थितियों के फलस्वरूप विकास को स्वाभाविक माना, बल्कि इस बात से भी कि उनमें लगनों और बाह्य प्रभावों के सामने कुछ–कुछ झुक जाने की प्रवृत्ति थी। जब नेहरू ने भारत सरकार का नेतृत्व किया, तो उन्होनें वह राजनीतिक लचीलापन प्रदर्षित किया, जो व्यावहारिकतावादी स्वरूप का था। नेहरू के राजनीतिक विचारों का विकास निरंतर अवरोही स्वरूप का नहीं था। उसमें राजनीतिक वातावरण और राजनीतिक संघर्ष के अनुरूप चढ़ाव–उतार आते रहते थे।

भारतीय लोकतंत्र में हमेषा इस वास्तविकता को ध्याय में रखा गया। इसे वास्तविकता स्वरूप प्रदान करने के लिए स्वतंत्रता के तुरंत पष्चात् भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किए गए तथा जमीदारी प्रथा का अंत कर दिया गया। हांलाकि यह अपने उद्देष्यों को प्राप्त करने में असफल ही रहा। फिर बंधुआ मजदूरी का अंत किया गया। सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के तहत गरीबी तथा बेरोजगारी जैसी विभिन्न विकराल समस्याओ पर लगातार जोर किया गया। भारत ने खाद्यान्न, दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल की। प्रथम हरितक्रान्ति का योगदान उल्लेखनीय रहा तथा द्वितीय हरित क्रान्ति को अब उसकी अगली कड़ी के रूप में प्रस्तुत किए जाने की योजना है। औद्योगिक क्षेत्र तथा सड़क, बिजली, परिवहन, सिंचाई, वायु व जल परिवहन के क्षेत्र में, अंतरिक्ष एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत ने उल्लेखनीय सफलताएं हासिल की हैं तथा आज यह विष्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है। लोकतंत्र वैचारिक स्वतंत्रता के लिए सबसे अच्छा वातावरण उपलब्ध कराता है। इस संदर्भ में मीडिया एक महत्वपूर्ण अवयव है। भारतीय लोकतंत्र ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हमेषा बल दिया है। यही कारण है कि यहां मीडिया का व्यापक प्रसार हुआ है। मीडिया ने भी अपनी धर्मनिरपेक्ष भूमिका निभाते हुए कई उपलब्धियां हासिल की है और भारतीय लोकतंत्र को परिपक्व बनाने में, उसकी विसंगतियों पर चोट करने में मीडिया की अहम भूमिका रही है। सूचना अधिकार इसी परिप्रेक्ष्य में एक अगली कड़ी है। भारतीय

लोकतंत्र के समक्ष केवल उपलब्धियां ही नहीं है। उसने समय के साथ–साथ कई चुनौतियों का सामना किया है। ये चुनौतियां अपने स्वरूप में आंतरिक और बाह्य दोनों है। हमारे लोकतंत्र को कई प्रष्नों का समाधान करना है, जिनके समाधान के बिना संभवतः हमारी लोकतांत्रिक संस्कृति, हमारा लोकतांत्रिक समाज स्वयं को माफ नहीं कर पाएगा। आज भारत की सबसे बड़ी चुनौतियां राजनीतिक स्तर पर उपस्थित है। स्थिरता व परिपक्वता के बावजूद हमारी राजनीतिक प्रणाली में गहरी विसंगतियां पैदा हो गई है। राजनीति आज धर्म, जाति, क्षेत्र, संप्रदाय जैसे संकीर्ण मुद्दों पर आधारित हो गई है तथा विकास सम्बन्धी वास्तविक मुद्दे गौण हो गए हैं। आज चुनावों की निष्पक्षता पर भी संकट मंडरा रहा है। चूंकि भारतीय आम चुनाव आज धनबल एवं बाहुबल पर आश्रित होते जा रहे हैं। धन चुनावों में अनैतिक भूमिका निभा रहा है। सत्ता की राजनीतिक ने अपराधीकरण की समस्या को भी बढ़ाया है फलतः राजनीतिक नेतृत्व का संकट पैदा हो गया है। आज दागी व्यक्ति संसद के साथ–साथ सरकार में भी शामिल हो रहे हैं। इससे राजनीतिक दलों में नैतिकता का संकट भी पैदा हुई है तथा कार्य संस्कृति में गिरावट आई है।

जब भारत 15 अगस्त, 1947 ई0 को तो यहां राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना की गई। लेकिन हमारे समक्ष चुनौती थी–आर्थिक व सामाजिक न्याय को वास्तविक स्वरूप प्रदान करना। हमारे नीति निर्माता इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे। अतः उन्होंने संविधान के विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक संरचना में परिवर्तन के माध्यम के रूप में देखा गया और संरचनात्मक व आधारभूत बदलाव की यह प्रक्रिया आज तक जारी है। आज़ादी के 60 वर्षों के इस कालखण्ड में भारतीय लोकतंत्र के समक्ष कई तरह के अनुभव आए। कुछ गौरवषाली स्वर्णिम क्षण भी आए जो उपलब्धियों से परिपूर्ण थे, तो कुछ ऐसी चुनौतियां भी आई जिसने हमारे लोकतंत्र को आत्म–मूल्यांकन करने हेतु बाध्य भी किया। जहां तक भारतीय लोकतंत्र की उपलब्धियों का सवाल है तो उसे कई स्तरो पर देखा जा सकता है। एक शासन

प्रणाली के रूप में भारतीय लोकतंत्र निष्चय ही परिपक्व हो चुका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद भारत के प्रत्येक नागरिक को मताधिकार प्रदान किया गया तथा स्वतंत्र निर्वाचन की जो व्यवस्था की गई थी वह लगातार अपनी भूमिका का निर्वहन करती आ रही है। भारत में सत्ता का परिवर्तन हमेाा शांतिपूर्ण तरीके से और आम निर्वाचन के माध्यम से होता रहा है। इस प्रकार इसने स्थिरता व परिपक्वता को प्राप्त किया है। जब हम इस उपमहाद्वीप के अन्य देाों पाकिस्तान, बांग्लादेष से तुलना करते हैं तो देखते हैं। कि वहां लगातार संविधान का खण्डन हुआ तथा जनमत की उपेक्षा करते हुए सैनिक शासन की स्थापना की गई लेकिन भारतीय लोकतंत्र ने हमेषा जनादेष का सम्मान किया। कोई भी राजनीतिक दल जीता या हारा हो लेकिन जीत हमेषा भारतीय मतदाताओं व लोकतंत्र की ही हुई। फिर भारतीय लोकतंत्र ने हमेषा अपने राजीतिक आधार का विस्तार किया। जिन वर्गों को हमेषा राजनीतिक शासन प्रणाली से वंचित रखा गया था। उन्हें लगातार राजनीति की मुख्य धारा में शामिल होने का अवसर दिया गया। आज भारतीय लोकतंत्र

किसी वर्ग विषेष नहीं या किसी क्षेत्र विषेष नहीं बल्कि संपूर्ण समाज व सम्पर्ण देष की आत्मा एवं आवाज़ बनकर उभरा है। फिर भारतीय महिलाओं को तथा ग्रामीण जनता को स्वषासन का अधिकार देकर भारतीय लोकतंत्र ने जता दिया कि वह प्रगतिषील है, जीवित है और राजनीतिक परिवर्तनों का सषक्त माध्यम है न कि यथास्थितिवादी शासन प्रणाली। जब हम सामाजिक स्तर पर भारतीय लोकतंत्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हैं तो भी काफी प्रगति दिखती है। भारत एक लोकतांत्रिक देश है अतः यहाँ दलीय संगठन भी लोकतांत्रिक पद्धति पर ही आधारित हैं। परन्तु दलीय प्रणाली के अवलोकन पर मिचेल्स का तर्क याद आता है, जहाँ उसने कहा है कि आधुनिक संसार मे ं प्रजातंत्र असम्भव है। उसके शब्दों में 'प्रजातंत्र' जो किसी समय में बुद्धिजीवी सिद्धान्त था और व्यवहार में एक आन्दोलन था अब एक आलोचनात्मक चरण में प्रवेश कर चुका है और इससे बाहर निकलना बहुत कठिन है। अपनी पुस्तक 'पोलिटीकल पार्टीज' में उसने रूसो के सामाजिक समझौता से उद्धरण लेते हुए कहा 'इस शब्द का सही माने में अर्थ किया जाय तो संसार में सच्चा प्रजातंत्र कभी था ही नही और न कभी होगा' यह प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है कि बहुसंख्यक शासन करे ं।

राजनीतिक सिद्धान्त में लोकतंत्र से हम क्या समझते हैं? लोकतंत्र दिनोंदिन अच्छे शासन के उस रूप में लिया जा रहा है जो एक राज्यतंत्र के रूप में संगठित व्यष्टियों के समूह के मध्य निर्णय लेने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। लोकतंत्र का आवश्यक मूल्य उन निर्णयों जो प्रत्येक नागरिक के हितों को ध्यान में रखते हैं तथा सभी के ऊपर समक्ष रूप से बाध्यकारी होते हैं को लेने के लिए अन्य तरीकों पर नैतिक श्रेष्ठता में सन्निहित है। मूल सिद्धान्त जो इस अर्थ में लोकतंत्र की नींव रखते हैं और उसे न्यायसंगत ठहराते हैं, दुहरे होते हैं। प्रथम, व्यष्टि स्वतन्त्र युक्तियुक्त प्राणी हैं जिनमें यह निर्णय करने की क्षमता होती है कि उनके लिए क्या अच्छा है। दूसरे, सभी व्यष्टियों के सामूहिक निर्णयों जो सबको समान रूप से प्रभावित करते हैं, के अवधारणा में समान प्रतिष्ठा होनी चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि जबûसामूहिक तौर पर सार्वजनिक रूप से सहमत निर्णय को लेने के लिए प्रयास किया जाता है वहाँ उस निर्णय/स्वरूप को प्राप्त करने के लिए आमतौर पर एकमत होना असंभव है। इस प्रकार सार्वजनिक रूप से सहमत निर्णय को लेने के लिए सर्वाधिक प्रशंसनीय क्रियाविधि बहुमत के शासन का सिद्धान्त है जो सर्वाधिक व्यावहारिक तथा नैतिक रूप से स्वीकार्य है। विशाल और जटिल समाजों के कारण प्रत्येक मुद्दे पर प्रगति थी। पूँजीवादी प्रजातंत्रों में भी निर्णय लेने के लिए एक साथ इकट्ठा होना संभव नहीं है जैसा कि सी.बी. मैकर्सन ने लोकतंत्र के सहभागिता प्रतिदर्श को समझाते समय कल्पना की थी।

इसीलिए आधुनिक प्रजातंत्र एक निश्चित क्रियाविधि तथा प्रतिनिधिक संस्थानों के माध्यम से कार्य करता है जिससे लोग अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें और उन्हें समय–समय पर उत्तरदायी ठहरा सकें। यदि हम लोकतंत्र को विशुद्ध रूप से संस्थानों के एक ऐसे सैट के रूप में देखते हैं जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों, विधायी सभाओं, सामान्य विधिक संरचना तथा संवैधानिक सरकारों को परिवेष्ठित करते हैं, तब हम

अवश्यमेव लोकतंत्र के क्रियाविधिक स्वरूप का विशेषाधिकार प्राप्त कर रहे हैं। तथापि, यदि हमारे पास ऐसे सच्चे समान नागरिकों द्वारा आबाद किए जाने वाले लोकतंत्र का विचार है जो राजनीतिक रूप से वयस्क है, जीवन के विभिन्न मतों और तरीकों के प्रति सहिष्णु है और अपने शासकों को चुनाव करने और उन्हें उत्तरदायी ठहराने में समान आवाज वाले हैं तब हम लोकतंत्र की यथार्थ धारणा का विशेषाधिकार प्राप्त कर रहे हैं। उदारवादी राजनीतिक सिद्धांत में, लोकतंत्र के ये दो विरोधाभासी प्रतिदर्श क्रमशः क्रियाविधिक और यथार्थ लोकतंत्र के रूप में माने जाते हैं। इसके अनुसार, लोकतंत्र के सीमित प्रक्रियावादी दृष्टिकोण में मत सहभागिता का स्तर, चुनावों की आवृत्ति तथा राजनीतिक सत्ता में शान्तिपूर्ण परिवर्तन लोकतंत्र की सेहत के सूचकांक के रूप में लिए जाते हैं। तथापि, इस प्रकार के दृष्टिकोण को निर्वाचन की भ्रांति का खतरा बना रहता है क्योंकि सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ जिनमें प्रजातांत्रिक–सांस्कृतिक समुदाय अल्पसंख्यकों और बच्चों सहित अन्तर्ग्रस्त हैं उनके लिए प्रभावी रूप से भाग लेने को मुश्किल बना देती हैं क्योंकि इस प्रकार के परिप्रेक्ष्य में उन्हें व्यापक रूप से अनदेखा कर दिया जाता है। दूसरी तरफ, लोकतंत्र के यथार्थ स्वरूप के समर्थक तर्क देते हैं कि लोकतांत्रिक परियोजना उस समय तक अपूर्ण है जब तक नागरिकता के समान अधिकारों का कोई अर्थपूर्ण प्रयास सभी को अभिनिश्चित न कर दिया जाए। इस समय में, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विधिगत शासन तथा सभी को इसका संरक्षण आवश्यक है परन्तु किसी भी उपाय से लोकतंत्र के लिए पर्याप्त शर्तें अर्थपूर्ण नहीं है। लोकतंत्र की परियोजना मात्र विधिगत और राजनीतिक समानता प्राप्त करने से सम्पन्न नहीं हो जाती अपितु असमानताओं द्वारा इस पर कठोर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं जिससे कइयों को शासकीय निर्णयों (लोकतंत्रीकरण का सामाजिक एजेंडा) को प्रभावित करने के लिए यथार्थतः समान अवसर नहीं मिल पाते हैं। असामाजिक औद्योगिक सूचना समाजों से पूर्व सरकारी नीति और लोकमत के ऊपर लोक नीति विशेषज्ञों के बढ़ते प्रभाव का प्रतीक, विशिष्ट ज्ञान का संकेन्द्रन एक अन्य सीमांकन हैं। विशेषज्ञों ने आर्थिक नीति निर्माण को लोकतांत्रिक दबाव से अवरुद्ध कर दिया है।

संदर्भ

[1] वल्लभशरण, नई पंचायती राज व्यवस्था। –संवैधानिक संशोधन और राज्य, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली, 1966. पृष्ठ–13,14।

[2] रजनी कोठारी, राजनीति की किताब, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.पृष्ठ–106।

[3] आशीष भट्ट, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं जनजातीय नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.सं. 75–76

[4] सुनील महावर, ''भारत में सुशासन एवं पंचायती राज संस्थाएं : भूमिका संभावनाएं और चुनौतियां'', लोकतंत्र समीक्षा, शिवम् ऑफसेट प्रेस, नई दिल्ली, 2012